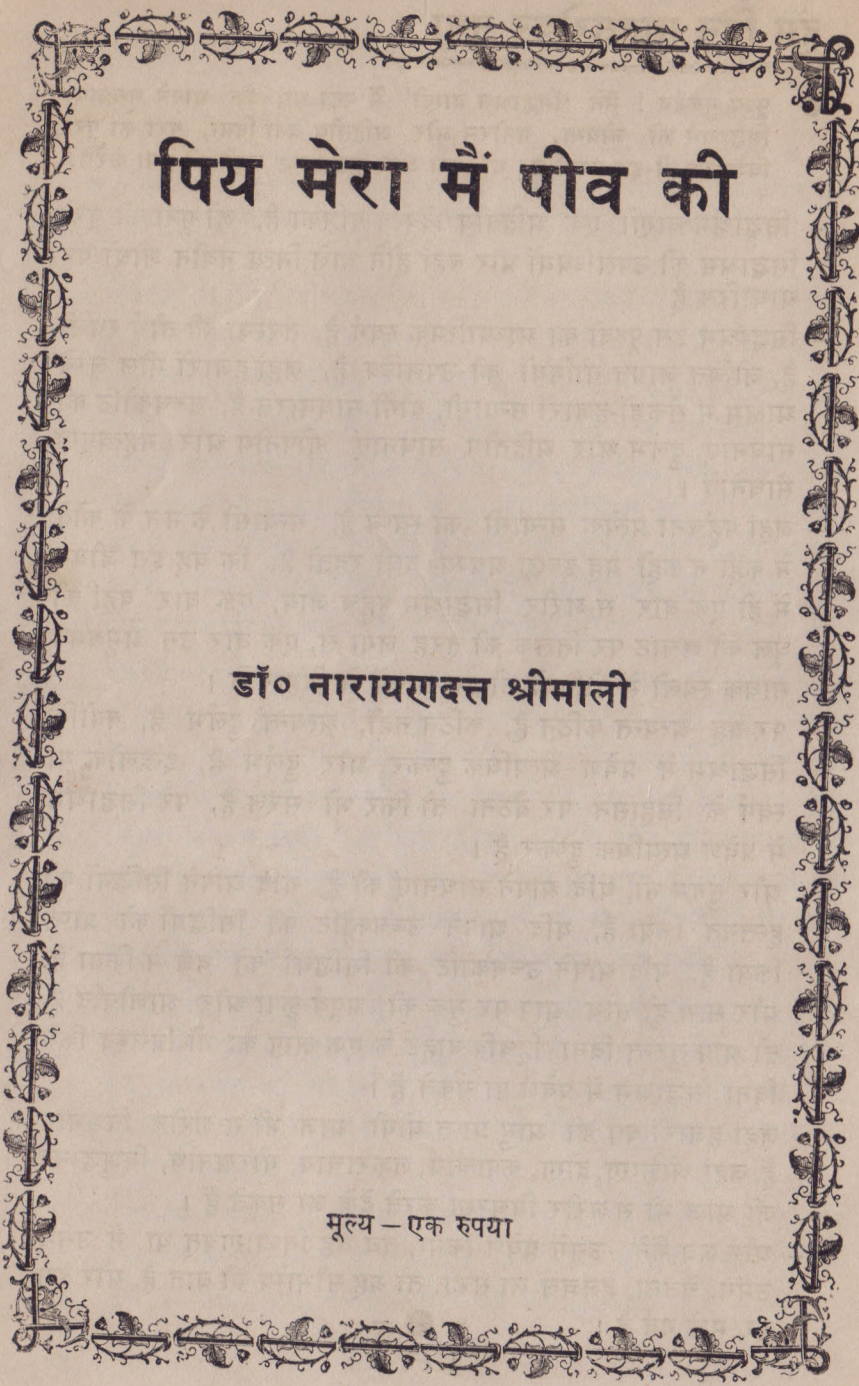




पिय मेरा मैं पीव की

डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली

मूल्य — एक रुपया

हंस बिन मानसरोवर सूना

● पूज्य गुरुदेव ! मैंने 'सिद्धाश्रम वाणी' में पढ़ा था, कि आपने मृतप्रायः सिद्धाश्रम को जीवन्त, मनोरम और अद्वितीय बना दिया, पूरा का पूरा विशेषांक ही इन तथ्यों पर था, क्या आप कुछ स्पष्ट करने की कृपा करेंगे?

- 'सिद्धाश्रम वाणी' एक अद्वितीय देवत्व पत्रिका है, जो पूरी की पूरी सिद्धाश्रम की उपलब्धियों और वहां होने वाले नित्य नवीन शोधों पर आधारित है
- सिद्धाश्रम इस पृथ्वी का आध्यात्मिक स्वर्ग है, तपस्या की तीर्थ स्थली है, जीवित जाग्रत योगियों की उपलब्धि है, जहां हजारों मील लम्बे आश्रम में सैकड़ों-हजारों सन्यासी, योगी साधनारत हैं, उच्चकोटि की साधनाएं, दुर्लभ और अद्वितीय साधनाएं, गोपनीय और महत्वपूर्ण साधनाएं ।
- जहां पहुंचना प्रत्येक सन्यासी का स्वप्न है, सन्यासी के मन के कोने में कहीं न कहीं यह इच्छा अवश्य दबी रहती है, कि वह इस जीवन में ही एक बार स शरीर सिद्धाश्रम पहुंच जाय, एक बार वहां की धूल को ललाट पर तिलक की तरह लगा ले, एक बार उस अमृतमय साधक स्थली में योगियों को इन आंखों से निहार ले ।
- पर यह अत्यन्त कठिन है, कठिन नहीं, अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि सिद्धाश्रम में प्रवेश अत्यधिक दुष्कर और दुर्लभ है, इन्द्रलोक या स्वर्ग के सिंहासन पर बैठना तो फिर भी सरल है, पर सिद्धाश्रम में प्रवेश अत्यधिक दुष्कर है ।
- और सुगम भी, यदि आपने साधनाएं की है, यदि आपने सिद्धियों को हस्तगत किया है, यदि आपने उच्चकोटि की सिद्धियों को प्राप्त किया है, यदि आपने उच्चकोटि की सिद्धियों को वश में किया है, और साथ ही साथ आप पर गुरु की अपूर्व कृपा और आशीर्वाद है, तो आप तुरन्त बिना हिचकिचाहट के एक क्षण का भी बिलम्ब किये बिना सिद्धाश्रम में प्रवेश पा सकते हैं ।
- जहां हजारों वर्षों को आयु प्राप्त योगी आज भी स शरीर विद्यमान हैं, जहां श्रीकृष्ण, द्रोण, कृपाचार्य, शंकराचार्य, गोरखनाथ, विशुद्धानंद जी आज भी स शरीर विचरण करते देखे जा सकते हैं ।
- और जब मैंने उसमें प्रवेश किया, तब वह निष्प्राणवत् था, मैं उसमें उमंग, चेतना, हलचल ला सका, तो यह सौभाग्य की बात है, और इस पर मुझे गर्व है ।

इस तन का दियरा करौं

● गुरुदेव, आप बहुत परिश्रम करते हैं, और उसका प्रभाव आपके शरीर पर अनुभव होने लगा है, क्या हम इसके लिए कुछ कर नहीं सकते ?

- विधाता ने जब मेरी भाग्य लिपि लिखी, तो उसमें परिश्रम की पंक्तियां सबसे अधिक थी, और इसीलिए मेरा जीवन श्रम में ही, परिश्रम में ही व्यतीत हुआ, विश्राम जैसा शब्द मेरे जीवन में है ही नहीं ।
- और यह परिश्रम मेरे लिये नहीं, स्वार्थ के लिये कोई यत्न प्रयत्न या स्वार्थ नहीं, जो कुछ किया शिष्यों के लिये किया, शरीर के रक्त का एक-एक कण शिष्यों को ही समर्पित किया, अगर मैं तिल-तिल करके जला भी हूं, तो शिष्यों के लिये, अगर मेरे शरीर का कतरा-कतरा क्षरित हुआ है, तो वह शिष्यों के लिये, जीवन की प्रत्येक सांस, प्रत्येक धड़कन शिष्यों के लिये ही समर्पित रही ।
- इसलिये कि ये कुछ बन जाय, इसलिये कि इन मुरदा शरीरों में प्राण फूंक सकूँ, इसलिये कि इन बुझते दियों को वापिस जला सकूँ, चेतना दे सकूँ, अपना रक्त दे कर इन्हें सींच सकूँ, जिससे कि ये दिये जलें, जिससे कि ये दिये ज्योत्स्नित हों, जिससे कि इन दियों से प्रकाश फूटे, जिससे कि इन दियों से अधियारा छूटे, और ये छोटे-छोटे दिये सूर्य का स्थान ले सकें, प्रकाशवान हो सकें, मेरी दी हुई ज्ञान की गरिमा से देश का नेतृत्व कर सकें, घोर भौतिकता में ये आध्यात्मिकता की लहर पैदा कर सकें, उमंग पैदा कर सकें, हिलोर पैदा कर सकें ।
- और इतना सब कुछ करने के लिये बहुत कुछ खोना भी पड़ता है, और खोया है, रक्त की एक-एक बूंद, मांस की एक-एक बोटो, चेहरे का नूर, वक्षस्थल की विशालता, जोरों का अट्टहास, चेहरे की मुस्कराहट आंखों की छेड़खानियां, और आवाज की वक्तृता, बुलन्दी, जोश खरोश और जगमगाहट ।
- पर मुझे प्रसन्नता है, कि यह सब कुर्बानी शिष्यों के लिये दी है, और जिन्दगी के अंतिम क्षण तक इन दियों को जलाये रखने के लिये कुर्बानी देता रहूंगा, क्योंकि आप सब मेरे ही प्राणांश हैं ।

प्रेम पंथ अति कठिन है

- आपका व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य और शानदार है, चौड़े कंधे, विशाल समुद्र की तरह वक्षस्थल, आजानु, गौर वर्णीय भुजाएं, तेजस्वी मुख मण्डल और दैदीप्यमान चेहरा, और उस पर एक ही बार में सम्मोहित सी कर देने वाली मुस्कराहट.... मुझे कहने के लिए क्षमा करें, मैं आप से रश्क करने लगी हूं ... ।
- रश्क मुझसे नहीं, मेरी देह से भी नहीं, रश्क तो तुम्हें मेरे प्राणों से करना चाहिए, शरीर तो क्षणभंगुर, नाशवान है, तुम्हारा मेरा संबंध देहगत है ही नहीं, प्राणगत है, गुरु और शिष्य का संबंध बहुत गहरा होता है, जहां देह का विसर्जन हो जाता है, जहां केवल प्राणतत्त्व ही जाग्रत रहते हैं ।
- और जो प्राण तत्त्व जाग्रत होता है, जो गुरु चैतन्य और जागरूक होता है, जो गुरु ब्रह्म से साक्षात्कार कर चुका होता है, जिसने ब्रह्म को पहिचान लिया, उसका बाहरी शरीर भी अपने आप आकर्षक चुम्बकीय और दैदीप्यमान हो जाता है, क्योंकि उसका रोम-रोम जाग्रत होता है, क्योंकि उसके शरीर का अणु-अणु चैतन्य होता है, क्योंकि उसके सारे व्यक्तित्व में ब्रह्मत्व समाया हुआ होता है, और यह ब्रह्मत्व ही आकर्षक, सुन्दर और चित्ताकर्षक होता है, उससे रश्क होना स्वाभाविक है ।
- पर इस रश्क में वासना की दुर्गन्ध नहीं होती, इस प्रेम में घटियापन या ओछापन नहीं होता, इसमें किसी प्रकार की कमजोरी नहीं होती, क्योंकि वह इन सब से ऊपर उठ चुका होता है, क्योंकि वह साधारण पुरुष नहीं होता, वह ब्रह्मत्व से स्निग्ध होता है, वह चैतन्यता से परिपूर्ण होता है ।
- और इस पृथ्वी पर ऐसे व्यक्तित्व कभी-कभी ही जन्म लेते हैं, इस प्रकार के व्यक्तित्व पुरुष नहीं 'पुरुषोत्तम' होते हैं, श्रीकृष्ण होते हैं, बुद्ध होते हैं, चैतन्य होते हैं, महावीर होते हैं, शंकराचार्य होते हैं, ऐसे व्यक्तित्व से ही मानवता जगमगाती है, ऐसे व्यक्तित्व से ही पृथ्वी गरिमामय बनती है, ऐसे व्यक्तित्व से ही प्रकाश की, ब्रह्मत्व की किरणें प्रस्फुटित होती हैं, ऐसे व्यक्ति ही सही अर्थों में जागरूक और चैतन्य होते हैं ।
- और जब कभी तुम्हारे जीवन में संयोग से कभी ऐसे व्यक्तित्व टकरा जाय, तो कस कर उनके पांव पकड़ लेना, हिचकिचाना मत, रुकना मत, सोच-विचार में समय मत गंवाना, समा जाना उसके प्राणों में, डब जाना उसके व्यक्तित्व में, धन्य हो जाओगी तुम, अहोभाग होगा तुम्हारा ।

फिर छूम छुनन पाजेब बजी

- मैंने एक बंगाली पुस्तक में पढ़ा था, कि आप पहले व्यक्तित्व थे, जिसने सिद्धाश्रम की व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किया, रूखेपन के स्थान पर सरसता फैलाई, साधना विधियों को आसान किया और मुख्य-मुख्य पर्वों पर गन्धर्व संगीत, देव संगीत एवं अप्सराओं के नृत्य प्रारम्भ करने की परम्परा प्रक्रिया प्रारंभ की, यह सब सन्यास की मर्यादा के विपरीत नहीं हैं ?
- शायद तुमने सन्यास की परिभाषा ही नहीं समझी, मात्र भगवे कपड़े पहिन कर भटकने वालों को सन्यासी नहीं कहते, सन्यासी का तात्पर्य है, जो मुक्त हो, समस्त बंधनों से स्वतंत्र हो, मोह-माया, राग-द्वेष से परे हो, जिसकी आंख स्वच्छ हो, जो सभी प्रकार से पूर्णता की ओर अग्रसर हो ।
- सन्यासी के लिए भगवे कपड़े अनिवार्य नहीं हैं, अगर भगवे वस्त्र हैं, और स्वार्थी है, या लालची है, तो वह फिर हमसे भी गया गुजरा व्यक्ति है, जिसने भगवे तो पहन लिए, लेकिन मन पर, नजर पर नियंत्रण नहीं रख सका, वह सन्यासी कैसा ?
- फिर महावीर ने तो जीवन भर भगवे कपड़े नहीं पहिने, वह सन्यासी नहीं थे, बुद्ध ने भगवे कपड़ों को तबज्जह नहीं दी, तो फिर वे भी सन्यासी नहीं थे, तुम्हारी सन्यास की मान्यताएं ही अधूरी और खंडित हैं ।
- और अप्सराओं के नृत्य या स्त्रियों को देख लेने से सन्यस्त कहां से खंडित हो गया, तुम्हारे धर्म ग्रन्थों ने स्त्रियों को अद्भुत समझ लिया और तुमने स्त्री को देखना ही पाप समझ लिया, और जिन्होंने ये धर्म ग्रन्थ लिखे, वे स्त्रियों से प्रताड़ित थे, और उनकी कुंठा बाहिर निकल कर व्यक्त हुई, मनुस्मृति के रचयिता मनु अपनी पत्नी ईड़ा से बहुत दुःखी थे और स्त्रियों को समाज के योग्य ही नहीं समझा, तुलसी की पत्नी रत्नावली ने तुलसी को फटकारा था, इसलिए उन्होंने रामचरित मानस में लिख दिया 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी', कबीर अपनी पत्नी से दुःखी थे और उसने नारी को "जहर की पुड़िया" बता दिया ।
- ये सब कायर थे, बुझदिल थे, पत्नियों से संव्रस्त और प्रताड़ित थे, इसलिए इनकी लेखनी ने उल्टा-मुल्टा लिखा, अगर स्त्री को देख कर तुम्हारे चित्त पर विकार आ गया, तो फिर तुम सन्यासी कैसे स्त्री के सन्दर्भ से तुम विचलित हो गये, फिर तुम योगी कैसे ? श्रीकृष्ण तो हजारों गोपियों से प्रेम करके भी "योगीराज" कहलाये, स्त्रियां, साधिकाएं, शिष्याएं, जीवन और साधना की पूरक हैं बाधक नहीं ।

हंसा ! मानसरोवर जाहि

- आपने कहा, कि जब आपने सिद्धाश्रम में प्रवेश लिया तो वह निष्प्राण था, और आपने उसमें उमंग, चेतना, उत्साह भरा, कैसे वह निष्प्राणवत् था, और अब उसमें क्या जीवन्तता है, सुनने की इच्छा होने लगी है।

- निष्प्राण का तात्पर्य, वह सिद्ध पीठ तो था, उसमें उच्चकोटि के योगी एवं परमहंस तपस्वी तो साधनारत थे, श्रीकृष्ण और शंकर, गोरख जैसे योगी भी विचरण कर रहे थे, पर था सुनसान, कोई हलचल नहीं, कोई चेतना नहीं, कोई खिलखिलाहट, मुस्कराहट नहीं, ठूठ की तरह बैठे साधनारत थे।
- और सिद्धयोगा भील, जिसका स्वच्छ निर्मल जल तो देवताओं तक ने सराहा है, जिसमें स्नान करने से एक क्षण में ही शरीर के समस्त रोग समाप्त हो कर वह निरोग, स्वस्थ एवं तन्दुरुस्त हो जाता है, उसका कायाकल्प हो जाता है।
- क्योंकि सिद्धाश्रम में वृद्धता नहीं है, बुढ़ापा नहीं है, मृत्यु नहीं है, वहां फूल मुरझाते नहीं हैं, वहां चौबीसों घण्टे दूधिया रोशनी बिखरी रहती है, हर क्षण वसन्त मुस्कराता रहता है, हर पल कामदेव प्रत्यंचा चढ़ाये तन-मन को बेधता रहता है, स्वर्ग की दुर्लभ चिड़ियां चहचहाती रहती हैं, पर इतना सब कुछ होने पर भी चहल-पहल, हंसी-मजाक, मुस्कराहट, प्रसन्नता, पुलक, सलज्जता कुछ भी नहीं थी, ऐसा लगता था, कि जैसे लोहे के कठोर सिकंजे में हर योगी कैद हो, अनुशासन के निर्मम बन्धन में बंधा हुआ हो।
- और यह मुझे सह्य नहीं था, मैं ऐसे दमघोंड़ वातावरण में जीवित नहीं रह सकता था, मेरे मन में सिद्धाश्रम की ऐसी कल्पना ही नहीं थी, और मैंने उस ठहरे हुए जल में हिलोर पैदा की, उस रुकी हुई हवा में सरसराहट दी, सन्यासिनियों को मुस्कराहट दी, साधिकाओं को खिलखिलाहट दी, नौजवानों को अट्टहास सिखाया, और सिद्धाश्रम दिवस या अन्य महत्वपूर्ण पर्वों पर असंप्राओं - रंभा, मेनका, उर्वशी के नृत्य प्रारम्भ करवाये, गंधर्वों के कंठों से गीत उच्चरित करवाये, सिद्धयोगा भील में साधक साधिकाओं को तैरने की प्रेरणा दी, आज्ञा दी, क्रिया दी।
- और इन सबसे बड़े खूबसूरत योगियों के अहं को चोट पहुंची, उन्होंने कहा, सिद्धाश्रम में खिलखिलाहट ओछापन है, अप्सराओं के नृत्य गलत हैं, यह आपका विद्रोह है।
- और मैंने कहा, कि यह विद्रोह है, तो इसका मुझे गर्व है, और सिद्धाश्रम में तपस्या साधना के अलावा यह सब भी होगा ही।
- और विद्रोही तो मैं रहा भी हूं और हूं भी।

निखिलेश्वरं.....निखिलेश्वरं

- मेरी कुछ दिनों पूर्व हिमालय के सर्वमान्य सौ वर्षों से भी ज्यादा उम्र के योगी गणेशानन्द जी से भेंट हुई थी, और उन्होंने निखिलेश्वरानन्द जी के बारे में जिन आह्लादकारक पंक्तियों में चर्चा की थी, वे रोमांचक थीं, प्रशंसनीय थीं, नवीन थीं, पर आप तो मौन साधे बैठे हैं, स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के बारे में कुछ कहते ही नहीं, कुछ प्रकाश डालिये न!
- गणेशानन्द जी सन्यासियों में श्रेष्ठ, वीतरागी एवं परमहंस हैं, जो कि कई वर्षों से निराहार रह कर साधना की उस स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं, जो अपने आप में अद्वितीय हैं, और बहुत ही कम योगियों को सुलभ होती है।
- निखिलेश्वरानन्द के रूप में उनसे मेरी भेंट हुई थी, और संभवतः वे लगभग ढाई-तीन साल तक मेरे सानिध्य में रह कर उन्होंने कुछ विशिष्ट साधनाएं सम्पन्न की थी।
- और निखिलेश्वरानन्द के बारे में क्या कहूं, उनकी कहानियां उनकी घटनाएं और उनके प्रसंग तो हिमालय के चप्पे-चप्पे पर विद्यमान हैं, हिमालय का प्रत्येक कंकर उनकी घटनाओं और सिद्धियों से वाकिफ है, हिमालय की प्रत्येक कन्दरा उनके जीवन की साधनाओं की साक्षी है, हिमालय के चप्पे-चप्पे पर उनके तथ्य, उनके चिन्तन और सिद्धियां महिमा मंडित हैं।
- क्योंकि उन्होंने हिमालय को गरिमा दी, हिमालय के रूखे-सूखे सन्यासियों को चेतना दी, हिमालय के योगियों को उनके गौरव से परिचित कराया, हिमालय के लुप्त गिरि शृंगों को ढूँढ़ निकाला, हिमालय की वेगवती नदियों के उद्गम स्थलों को विश्व के सामने रखा, और उन स्थापनाओं को मान्यता दी, जो योगियों की धरोहर है, उस प्रतिष्ठा को प्रदान किया, जो हिमालय के लिये अनिवार्य हैं, भारत की उन प्राचीन सिद्धियों को नवीनता के साथ उजागर किया, जो लुप्तप्राय हो गई थीं, उन वनस्पतियों से विश्व को परिचित कराया, जो केवल धन्वन्तरी के ग्रन्थों में ही कैद बन कर रह गई थी।
- और उस निखिलेश्वरानन्द का विशाल समुद्रवत् वक्षस्थल, आजानु बलिष्ठ बांहें, भव्य और तेजस्वी मुख मण्डल, लहराती हुई जटा, दैदीप्यमान नेत्र, तेजस्वी और तपस्या से दमकते हुए हग-युग्म, भेदतो हुई सी आंखें, और बलिष्ठ हिमालयवत सुडौल गौर वर्ण शरीर, जो सिद्धियों का आगार था, साधनाओं की तपस्थली था, ऊंचे से ऊंचा योगी जिनके चरणारज प्राप्त कर अपने आप को धन्य-धन्य अनुभव करता था।
- और क्या कहूं — हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

जो देख्यो सो सांच

● प्रभुवर ! मैंने आपके कई प्रवचन सुने और, सुनते-सुनते खो जाती हूं, कहीं दूर . . . बहुत दूर . . . और मैं देखती हूं, कि चन्द्रमा की चांदनी है, यमुना किनारे रासलीला चल रही है, और मैं एक गोपी बनी उस रासलीला में उन्मत्तता से नृत्य कर रही हूं, करती जा रही हूं. . . करती जा रही हूं कि हठात् तन्द्रा दूट जाती है, और देखती हूं, कि आप सामने बैठे प्रवचन कर रहे हैं, ऐसा मैं कई बार देख चुकी हूं, प्रभु यह सत्य है, या वह सत्य ।

- यह भी सत्य है, और वह भी सत्य है, और तुम मुझे प्रवचन करते हुए देख रही हो, और तुम थोता बनी हुई सुन रही हो, यह सत्य है, द्वापर युग में तुम उन्मत्त गोपी थी, और बांसुरी की धुन पर थिरक उठती थी, यह भी सत्य है, और यह भी काल का ही एक खण्ड है, जो तुम वर्तमान में देख रही हो ।
- और यह भी मैं साफ-साफ देख रहा हूं, कि तुमने रासलीला में भाग लिया था, उन्मत्त होकर, दीवानगी की हद से, प्रेम की पराकाष्ठा से, स्नेह की पूर्णता से और प्रिय में पूर्ण रूप से विसर्जित होती हुई, लीन होती हुई ।
- पर तुम्हें वापिस जन्म लेना पड़ा, क्योंकि तुम्हारे अन्दर की ईर्ष्या और अहं गला नहीं था, तुम्हारे मन के किसी कोने में यह कुंठा व्याप्त थी कि श्रीकृष्ण तो राधा को बहुत अधिक चाह रहे हैं, वे तो राधा के अत्यन्त प्रिय हैं, वे तो राधा में पूरी तरह से समाये हुए हैं, और मैं राधा के मुकाबले में श्रीकृष्ण के उतने निकट नहीं हूं, और इस कुंठा ने तुम्हें बार-बार जन्म लेने को विवश किया ।
- हर बार जन्म लेकर अपने प्रिय से मिली, और थोड़ा 'अहं' गला पर फिर भी कुछ अहं रहा और फिर जन्म लेना पड़ा और इसीलिए बार-बार जन्म लेने को विवश होना पड़ा, पूर्ण रूप से प्रिय के प्राणों में समा नहीं सकी, जन्म-मरण के बंधन से मुक्त नहीं हो सकी ।
- पर अब अब और जन्म नहीं लेना है, इस बार पूरी तरह से अहं को समाप्त कर प्रिय में विसर्जित हो जाना है, लीन हो जाना है, ब्रह्म से एकाकार हो जाना है ।